

## ‘वसीयत’ उपन्यास में अभिव्यक्त वृद्धावास्थाजनित अकेलापन, अलगावबोध और स्मृतियां

पूजा यादव

शोधार्थी हिंदी विभाग

, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

ईमेल – kpoojayadav5452@gmail.com

**शोध सारांश** – वृद्धावस्था मानव जीवन की एक गंभीर, जटिल और मानवीय समस्या है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, भूमंडलीकरण, और पश्चिमी शिक्षा ने व्यक्तिवादिता की भावना में वृद्धि की है जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक विघटन ने इस समस्या को और भयंकर रूप में हमारे समक्ष प्रकट किया है। उपन्यासकार डॉ सूरज सिंह नेगी ने उत्तराखंड के पहाड़ी अंचल के परिवेश को लेकर अपने कथा की भावभूमि निर्मित की है। विश्वनाथ इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है जो भौतिक रूप से अर्जित नश्वर सम्पदा की तुलना में जीवन में संस्कार और जीवन मूल्यों, त्याग, परोपकार और मानवता की वसीयत को ज्यादा मूल्यवान माना है। आज की आधुनिकतावादी संस्कृति ने नई पीढ़ी को बुजुर्गों से कैसे दूर किया है इस पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने अपने बुजुर्गों, वृद्धजनो से विचार-विमर्श करने, सलाह लेने और उनके अनुभव रूपी ज्ञान के भंडार से लाभ उठाने की ओर संकेत किया है। आज तेजी से बदलते समाज में हमारे मूल्य, परम्पराएँ और संवेदनशीलता हमारी पूर्वजों से प्राप्त वसीयत है उसे संभालने और और उसके संरक्षण में ही हमारे जीवन की सार्थकता है।

**बीज शब्द** – वृद्धावस्था, भूमंडलीकरण, निरर्थकताबोध, मानवीय मूल्य और संस्कार, कर्तव्यबोध, अकेलापन, चारित्रिक गुण।

‘वसीयत’ डॉ सूरज सिंह नेगी विरचित दूसरा उपन्यास है जिसका प्रकाशन वर्ष 2018 है। इसके पूर्व ‘रिशतों की आंच’ (हिंदी संस्करण-2016, उर्दू संस्करण-2017) में हुआ। यह उपन्यास वर्तमान समय में आ रही विसंगतियों, श्रम से होता मोहभंग, संस्कारों, जीवन-मूल्यों, रिशतों की गर्माहट का अभाव और उनके प्रति अटूट विश्वास की कमी को उजागर करता है। उपन्यासकार ने लिखा है कि “आज हमारे चारों ओर यद्यपि प्रगति और विकास की धारा बह रही है लेकिन जीवन मूल्य और संस्कारों के प्रति हो रहे मोह भंग के कारण कई बार सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं होने का आभास हो रहा है। खासकर हमारी युवा पीढ़ी के लिए यह आवश्यक है कि जीवन में सफलता की कितनी ही ऊँची उड़ान भर लें लेकिन मन में जीवन मूल्य और संस्कारों के लिए स्थान नहीं है तो यह सफलता बेमानी प्रतीत होगी।” इन्ही मूल्यों और संस्कारों के प्रति दृढ़ आस्था आपके दूसरे उपन्यास ‘वसीयत’ में हमें देखने को मिलती है। इसी उपन्यास के द्वितीय संस्करण की भूमिका में नेगी जी लिखते हैं कि “प्रत्येक पिता द्वारा अपनी संतान को धन-सम्पदा, जायदाद, कारोबार, ऊँची इमारतें देने की बजाय उन्हें अच्छे संस्कार, जीवन

मूल्य, चारित्रिक गुण, संवेदनशीलता वसीयत के रूप दी जाए तो एक हद तक समस्याओं का समाधान संभव है।” लेखक इसलिए ऐसा कहना चाहता है क्योंकि आज वृद्धावस्था एक जटिल समस्या के रूप में हमारे समक्ष नजर आती है। बड़े माँ बाप की आँखें अपने बच्चों की झलक तक पाने के लिए बेताब है जिनको पढ़ा लिखा कर काबिल बनाया वे युवा ही उनसे मुंह मोड़ आधुनिकता और भौतिकता की अंधी दौड़ में बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं और अच्छा जीवन स्तर तथा अधिकाधिक लाभ कमाने की महत्वाकांक्षा ने उन्हें शहरों की ओर आकर्षित हो गये जिससे वे अपनी जड़ों से कटते जा रहे हैं। अपनी बूढ़ी आँखों में कई अरमानों को लिए वृद्ध अपने बच्चों को बेहतर उच्च शिक्षा और बलंदियों को छुर्न के लिए विदेश तक भेजते हैं और बच्चे अपनी नैतिक जिम्मेदारियों से मुंह मोड़ कर निरंतर उनकी उपेक्षा करते हैं।

वृद्धावस्था, जन्म से मृत्यु की निरंतरता के क्रम का एक अहम पड़ाव है। व्यक्ति बचपन से किशोरावस्था, युवावस्था को प्राप्त हो वृद्धावस्था तक पहुंचने की इस जीवन यात्रा में बहुत कुछ सीखता है, अनुभव का भंडार को समेटे हुए आने वाली पीढ़ी को ‘मूल्य और संस्कार’ के रूप में उस वसीयत को छोड़ जाता है जिससे वे परोपकार, त्याग, समर्पण और मानवीयता जैसे जीवन मूल्यों को अपना कर मानवता का कल्याण कर सकें। ‘वसीयत’ उपन्यास इसी सन्दर्भ में अपना विशेष महत्व रखता है कि यह पारिवारिक संबंधों व तीन पीढ़ियों को केंद्र में रख कर आज के समय में गिरते पारिवारिक मूल्यों, आदर्शों, संस्कारों के अभाव में घुटते माता-पिता के अरमानों तथा अकेलेपन की त्रासदी को झेलते वृद्धों द्वारा भविष्य के लिए देखे गये सुखमय सपने को धूमिल हो जाना, यह रेखांकित करता है कि “सच तो यही है कि बच्चों को माँ-बाप तभी तक अच्छे लगते हैं जब तक वो कुछ दे सकें, अपना काम खुद कर सकें और अन्य पर निर्भर न हों, उम्र के एक पड़ाव पर वह उन्हें अपने से अलग देखने लगते हैं।” यह कथन उपन्यास की ही एक पात्र प्रिया का है जो अपनी बेटी के घर रहकर नौकरानी की तरह जीवन जी रही है। इस तरह यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि ‘क्या उम्र के एक पड़ाव के बाद बड़े बुजुर्गों की किसी को आवश्यकता नहीं रह जाती भला? शायद सच्चाई यही है, बूढ़ों की किसी को जरूरत नहीं होती, वो बोझ ही हो जाते हैं। उनकी उपस्थिति बच्चों को उनकी आजादी में दखल लगने लगती है।’ इसी तरह उपन्यास में एक पात्र है शर्मा जी। अपने पोते के जन्मदिन पर शहर के बड़े होटल में पार्टी रखी गयी और नौकर

तक को यह बात पता थी लेकिन उन्हें किसी ने यह बताने की जेहमत उठाने की कोशिश नहीं की बल्कि एक चौकीदार की तरह घर रखवाली के लिए रोक दिया और उनकी राह देखते यहाँ शर्मा जी की भूख से हालत खराब थी-“रात के ग्यारह बजे तक बेसब्री से इंतजार करता रहा। न कोई फोन आया, न ही वह लोग पार्टी कर घर वापस लौटे। भूख के मारे हाल बेहाल हो रहा था, सोचा था पार्टी में से लौटते समय मेरे लिए खाना पैक करके ले आयेंगे। मैंने किचन में देखा कुछ न था, तभी टिफिन पर नजर पड़ गई। अक्सर सुबह की बची हुई रोटियाँ टिफिन में रख दी जाती हैं और शाम को काम वाली बाई को दे दी जाती हैं मैंने टिफिन में रखी रोटी निकाली और खा कर भूख शान्त कर डाली।” वृद्धों की इस तरह समाज में उनके प्रति ही रहे दुर्व्यवहार के अध्ययन में पाया गया है कि “भावनात्मक रूप से 36.4% बुजुर्गों को उपेक्षित किया जाता है वही घर परिवार के किसी मामले में उनसे सलाह मशविरा नहीं किया जाता है ये सब दुर्व्यवहार उन्हें भावनात्मक रूप से कमजोर बनाते हैं और मन करता है कि घर परिवार छोड़ कर कहीं चले जाए।”

उपन्यास का प्रमुख पात्र विश्वनाथ यौवन की दहलीज पर पाँव रखते हुए पिता से उच्च शिक्षा में अध्ययन के लिए विदेश भेजने की जिद करने पर पिता द्वारा कोई सकारात्मक उत्तर न देने पर रूठ जाता है और जीवन भर एक गाँठ बाँध लेता है परिणामस्वरूप एक योग्य व्यक्ति बनने पर भी पीछे मुड़कर नहीं देखता। इधर बूढ़े हो चले माँ-बाप हमेशा प्रत्येक मौसम, तीज-त्यौहार पर उसके वापस घर लौटने की आशा करते हैं और घर की देहरी पर बैठकर उसका इंतजार करते रहते हैं, लेकिन उनका इंतजार उनके जीवन काल में खत्म नहीं होता है। पिता द्वारा इस आशय का टेलीग्राम भेजने पर कि उसकी माँ अत्यधिक बीमार है, अंतिम समय में उसे देखना चाहती है, उसी समय उसे सरकार द्वारा विदेश भेजने का प्रस्ताव मिलने पर वह बीमार माँ से मिलने के बजाए विदेश चला जाता है, विश्वनाथ द्वारा यह उपेक्षा जहाँ उसके माँ बाबूजी को असहनीय पीड़ा पहुँचाता है वही विश्वनाथ के पुत्र राजकुमार द्वारा वही अतीत का वर्तमान रूप में पुनः सामने आना उसे झकझोर देता है रोते हुए वह कहता है -“आज मैं किस अधिकार से पोते का सुख पाने की इच्छा कर रहा हूँ। मेरे द्वारा बोई गयी फसल आज मेरे सामने खड़ी है आखिर मैं किसे दोष दूँ ?”

विश्वनाथ की भांति आज का युवा भी पिता की टोकाटाकी को अपनी स्वतंत्रता में बाधा के रूप में देखता है, पिता द्वारा दी गयी सीख को बिना समझे उनके अनुभवों को तवज्जो न देकर उनकी उपेक्षा करता है। सेवानिवृत्ति के पश्चात् जब उसे अपनी गलती का अहसास होता है तब वह केवल दुःख और पश्चाताप के अलावा, अतीत को याद करके बार-बार खुद को निरंतर कोसना व छटपटाना इसके सिवा उसके हाथ कुछ नहीं आता। अकेलापन - वसीयत उपन्यास के आरंभ में विश्वनाथ अपने डॉक्टर पुत्र राजकुमार के आने की खुशी लिए हुए यह सोचता है

कि चलो सेवानिवृत्ति के बाद बेटा पास में होगा उसकी शादी कर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाऊंगा पर माँ पिता की सभी उम्मीदों को पल भर वह यह कहकर तोड़ देता है कि उसने शादी कर ली है और वह दिल्ली में दो साल पहले ही लिए गये फ्लैट में रहेगा “विश्वनाथ के कानों में रह-रह कर राजकुमार के शब्द गूँजने लगे, उसे महसूस हुआ जैसे कलेजे में कोई तीर चुभो रहा हो। जिस आशा और उमंग के साथ भावी सुखद जीवन की कल्पना की थी वह धीरे-धीरे खिसकती नजर आ रही थी। मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार आने लगे। क्या राजकुमार कभी यहाँ नहीं आयेगा? क्या उसके दिल में हमारे लिए कोई जगह नहीं होगी? क्या हमारा आगे का जीवन अकेलेपन में ही कटने वाला है? इतने बड़े मकान में कैसे रहा जाएगा? ऐसे अनेक प्रश्नों ने रात के अँधेरे में उसे आ घेरा था।” इन्हीं प्रश्नों से जूझते हुए वह अकेलेपन से घिरता जा रहा था। अकेलापन आधुनिक सभ्यता और व्यक्ति केन्द्रित संस्कृति का अभिशाप है “मारकूजे अजनबीयत का संबंध अर्थ और समाज से कम और मन से अधिक जोड़ते हैं क्योंकि अजनबीयत, ऊब, आत्मविकृति, कुंठा, अवसाद आदि मनः स्थितियाँ पूंजीपतियों में कहीं अधिक पाई जाती हैं। धनीवर्ग आत्म-निर्वासन के कारण ही शब्द अथवा जीवन ठीक से नहीं जी पाता। शंकाएं उसका पीछा नहीं छोड़तीं, भय उसे आवेष्टित किए रहता है।” अस्तित्ववादी विचारकों ने भी अकेलेपन और निराशा को बहुत महत्त्व दिया है। विश्वनाथ अपने पद और स्थिति के वशीभूत होकर और अपने अहंकार के कारण अलग थलग पड़ चुका था, और सेवानिवृत्ति के बाद भी यह अपेक्षा रखता है कि वह किसी से आगे होकर क्यों बात करे, जो भी आये उसके पास आये, जी हजुरी करे। किन्तु यह संभव नहीं था भगवती बाबू और उनकी बातों से उन्हें अपने अंदर की बेचैनी और अकेलापन से थोड़ी राहत रहती किन्तु उनके गाँव जाने पर पुनः स्मृतियों और अकेलेपन को अपना साथी बना लेते, पत्नी सुधा के समझाने पर वह अपने व्यवहार में थोड़ा परिवर्तन लाते हैं और पार्क में जाकर क्लब के लोगो से मिलकर, उनके सुख दुखों से परिचित हो कर अपना भी मन हल्का करते हैं। रिश्तों की ताकत की पहचान उसकी आंच का अहसास उसे जब होता है तब वह कहता है कि- “जो लोग रिश्तों की आंच को समझ पाते हैं वह सदैव अपनों के दिल में रहते हैं और परायों को भी अपना बना लेते हैं। जीवन की एक कड़ी सच्चाई है कि सदैव अपनों के बीच ही सुख को ढूँढना मुश्किल भरा काम है इसके लिए श्रेष्ठ अभ्यास, त्याग और विशाल हृदय होना आवश्यक है। बाहरी दुनिया की चमक दमक हमें थोड़ी देर के लिए अच्छी लग सकती है लेकिन अपनों की रिश्तों की आंच से उत्पन्न हुई गर्माहट देर तक हमारा साथ देती है। जीवन में कभी अकेलेपन की अनुभूति नहीं होती है।” अतीत और बचपन की स्मृतियाँ - व्यक्ति जैसे जैसे वृद्धावस्था के नजदीक होता जाता है उसे शारीरिक और मानसिक रूप से कई

पेशानियों का सामना करना पड़ता है जिसके से एक है अतीत के प्रति मोह। अतीत की स्मृतियाँ उसे कभी अपने बचपन में ले जाती है तो कभी पुरानी यादों और बातों को बार-बार याद करने से दुःख, और वर्तमान के विषाद से लड़ने हेतु तैयार भी करती है। अपने बचपन और गाँव को याद करता विश्वनाथ सोचता है- "शहर की चकाचौंध के आगे कब अपनी माटी और अपनों से दूर होता चला गया, उसे स्वयं को भी यह आभास न हो सका। गाँव की मिट्टी की सौंधी सुगन्ध, कोयल की कूक, नौहल्ले से पानी लाती महिलाओं की कतारें, आँगन के बाहर से आते-जाते प्रदोष और उषाकाल में बैलों के गले में बँधी घंटियों से आती मधुर ध्वनि, जंगल में लकड़ी काटते हुए सरीली आवाज में अल्हड़ अन्दाज से गाते हुए युवक-युवतियों की स्वर-लहरी, प्रातः काल उठते ही कैलाश पर्वत के दर्शन, चीड़ के पेड़ों के झरमुट के बीच में से आती सूरज की किरण, घर की खिड़कियों के रास्ते घर में प्रवेश करते बादल, स्वर्ग की अप्सराओं के आगमन की प्रतीक्षा में बर्फ की चादर का बिछौना, किसी के घर में शुभ कार्य होने पर महीनों पहले महिलाओं और युवतियों द्वारा झोड़ का आयोजन, खेतों में हाड़-तोड़ मेहनत करते स्त्री-पुरुष। पौष एवं माघ के महीनों में किल्मौड़ की जड़ को निकाल कर जलाने से आती हुई तपन और उस अग्नि-कुण्ड के चारों तरफ बैठे वृद्ध, प्रौढ़, युवा और बच्चों के मध्य में दिन भर के अनुभवों को साझा करने की होड़, इसी बीच सरीली आवाज में 'हरहीत', राजूल -मालूशाही की वीरता एवं प्रेम गाथा को लयबद्ध आवाज में सुनाता युवक और भी न जाने ऐसी कितनी ही सुनहरी यादों और स्मृतियों को उसने हमेशा के लिए विस्मृत कर डाला था और उस पवित्र देवभूमि पहाड़ी प्रदेश जहाँ कल-कल करती नदी, प्रत्येक पर्वत शिखर पर देवी माँ के थान मौजूद थे और प्रत्येक के सुख-दुःख में केवल जात-बिरादरी ही नहीं आसपास के गाँव के लोग भी शरीक हो जाया करते, वहाँ से विश्वा ने अपने जीवन का सफर शुरू करते हुए कब प्रदेश के मुख्य प्रशासकों में विश्वनाथ के रूप में पहचान बना चुका था, इसका आभास वह न कर सका। जब तक सेवारत रहा कभी पीछे मुड़ कर नहीं देखा। "ऐसा अक्सर देखा जाता है कि बुजुर्ग अपनी बचपन की यादों में खो जाते हैं हमारे बुजुर्ग अपने पूर्वजों, समय, परिवेश और इतिहास को जानने का अच्छा माध्यम है। विश्वा जब-जब अपनी माँ और बाबूजी के तस्वीर के सामने खड़ा होता उसे बार बार अतीत कटोचता लगता जैसे माँ बाबूजी बात कर रहे हो उससे- "क्यों च्यला आज कैसा महसूस हो रहा है। जब तूने अपने ईजा-बाज्य को छोड़ा था तो कैसी चोट खाई होगी उन लोगों ने? तूने कभी पीछे मुड़कर देखा तक नहीं। आज तेरा अपना खून तेरे पास लौटकर नहीं आया तो इतना दर्द क्यों भला?" उसे लगे रहा था जैसे वे बार बार अतीत की गलतियों का याद दिला रहे हो -"तू आज किस अधिकार से बड़े माँ-बाप के दर्द को समझने की बात करने लगा है, जब तेरे अपने माँ और बाबूजी तेरी एक झलक पाने के लिए तरसे होंगे, उन पर क्या गुजरी होगी? आज तू अपने बेटे के इंतजार में इतना

अधीर हो चुका है कि मन बेचैन हो उठा।" और अंत में पिता द्वारा वसीयत स्वरूप सौपी डायरी को पढ़ विश्वनाथ अपने मातृभूमि का ऋण चुकाने अपने गाँव चला जाता है और रानीखेत स्थित अनाथालय व वृद्धाश्रम, तथा गाँव के विकास में अपना शेष जीवन समर्पित करने का इच्छुक हो जाता है। अंत में बेटा राजकुमार भी अपने ग्लोबल हास्पिटल को गाँव में खोलने की कामना से विश्वनाथ के पास आता है। इस तरह उपन्यास का सुखद अंत लेखक ने वर्णित किया है।

स्मृति शैली और कुमांउनी भाषा के शब्दों का प्रयोग कर लेखक ने उपन्यास की रोचकता को बढ़ा दिया है। एक ओर जहाँ रचनाकार ने युवा वर्ग के प्रति कर्तव्यबोध को जागृत कर उन्हें बुजुर्गों के अकेलेपन, अलगावबोध से उत्पन्न मानसिक पीड़ा को दिखाया वहीं साथ ही अंत में समाधान भी सुझाता है कि हम चाहे जितनी उड़ान भर ले लेकिन जब धरती पर हमें निविड़ की तलाश होगी तो अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम और अपनापन उसे जीवन के शाश्वत गुणों, जीवन मूल्यों और संस्कारों से बांध कर त्याग और परहित जैसे गुणों को पल्लवित होने का अवसर प्रदान करेगा।

\*\*\*\*\*

संदर्भ :-

- I. रिशतों की वसीयत आंच , सूरज सिंह नेगी, हेरिटेज पब्लिकेशन, जयपुर संस्करण-2023
- II. वसीयत, सूरज सिंह नेगी , साहित्यागार प्रकाशन द्वितीय संस्करण-2023, भूमिका पृष्ठ-2
- III. वहीं ,पृष्ठ-144
- IV. वहीं, पृष्ठ-144
- V. सामाजिक विमर्श, सेज पब्लिशिंग(SAGE) जून 2022, भारतीय समाज में बुजुर्गों के प्रति दुर्व्यवहार, अमनीश भाई पटेल, पृष्ठ-95
- VI. वसीयत, सूरज सिंह नेगी , साहित्यागार प्रकाशन द्वितीय संस्करण-2023, पृष्ठ -88
- VII. वहीं, पृष्ठ-21
- VIII. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ अमरनाथ , नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन संस्करण-2018
- IX. वसीयत, सूरज सिंह नेगी , साहित्यागार प्रकाशन द्वितीय संस्करण-2023, पृष्ठ-53
- X. वहीं पृष्ठ-31-32
- XI. वहीं, पृष्ठ-204
- XII. वहीं, पृष्ठ-272